UNIVERSAL LIBRARY

OU_182661

UNIVERSAL LIBRARY

प्रसिद्ध आलोचक डा० रामविलास शर्मा "नई प्रतिभाएँ" के संबंध में लिखते हैं—

इस संग्रह के प्रायः सभी कवि भागलपुर प्रगतिशील लेखक-संघ के सदस्य हैं। भागलपुर का साहित्यिक जीवन बहुत सरस होना चाहिये जहां ऐसे तरुण साहित्य-प्रेमी आपस में भी प्रेम से मिलते-जुलते, एक दूसरे की रचनाएँ सुनते-सुनाते और उन्हें एक साथ प्रकाशित करते हैं। उनका यह आशामय, स्नेहमय और उल्लासमय सहयोग दीर्घजीवी हो, यह मेरी हार्दिक कामना है।

इस संग्रह में यह दर्शनीय है कि भावों और विचारों में कहीं संकीर्णता या नारेबाजी नहीं है, जिसका आरोप प्रगतिशील लेखकों पर अक्सर किया जाता है। इनमें राजनीतिक कविताएं बहुत थोड़ी हैं, शेष का संबन्ध प्रकृति, प्रेम या कवि के जीवन संघर्षों से हैं। भावजगत् की यह विशदता और कवियों के दृष्टिकोण की यह उदारता सराहनीय है। वे सज्जन जो कहते हैं कि प्रगतिशीलता एक फौजी अनुशासन है और सुकुमार भावनाओं का गला घोट देती है, कृपया इस संग्रह को ध्यान से पढ़ें।

इन कविताओं में अनुभव की ताजगी है। कवियों ने जो कुछ देखा-सुना है, उसे अपने ढंग से व्यक्त करने का प्रयास किया है। ये नयी प्रतिभाएँ हैं, इसलिये जहां-तहां अनगढ़पन भी है। कुछ रचनाएँ ऐसे प्रयोग हैं जिन्हें समर्थ होकर कवि पीछे छोड़ आते हैं। लेकिन ये रचनाएं प्रयोगवादी नहीं हैं। इनमें वह निराशा, घुटन और कुंठा—भाषा और छन्दों के साथ प्रयोग के नाम पर खिलवाड़—नहीं है जिसे हमारे प्रयोगवादी मित्र इस युग की और कविता की विशेषता समझते हैं और जिसे वे "साम्य-

वादी आतङ्क" से सुरक्षित रखने के लिये उतावले दिखाई देते हैं। हर कवि अपने प्रारंभिक जीवन में प्रयोग ही करता है लेकिन वह आज के रूढ़ अर्थ में प्रयोगवादी नहीं होता। प्रगतिशील कवि किस स्वच्छन्दता से प्रयोग करता है, यह प्रयोगवादी मित्र इस संग्रह में देखें।

मुझे जो कविताएं विशेष रूप से अच्छी लगीं, उल्लेख करता हूँ। उपेन्द्र जी की "किरणविहग" में प्रकृति-दर्शन और रूपविधान बहुत सुन्दर है। "दिवंगत माता के प्रति" रचना में मधुसूदन जी की वेदना एकदम सच्ची और हृदय को स्पर्श करने वाली है। बिलास बिहारी जी की रचनाओं में लिरिक के गुण—गेयता और स्वतः स्फूर्त भावना—विद्यमान हैं। "जलता है जीवन जलने दो" पढ़ कर मुझे अपना वह समय याद आया जब मैंने लिखा था, "जलने दे यह तन मन प्राण"। उनके गीत का निर्वाह बहुत सुन्दर हुआ है। उनकी यह पंक्ति—"फिर भी सूजी आंखें ले कर होठों को मुस्का लेने दो"—हिन्दी कविता के नये यथार्थवाद की ओर सशक्त संकेत हैं। खगेन्द्र प्रसाद जी के "नवप्रात" में वह आशावाद है जो इस संग्रह के कवियों को हिन्दी के पस्त और कुंठित प्रयोग प्रेमियों से अलग करता है। "पावसगीत" में प्रकृति-वर्णन की ताजगी देखते बनती है। महेन्द्र कुमार जी के प्रयोग दिलचस्प हैं। ऋषि कुमार जी के व्यंग्यचित्र रोचक हैं और संग्रह को एकरस होने से बचाते हैं। रणजीत जी का "गीत" बहुत सीधा सादा और प्रभावपूर्ण है। 'बेचन' जी की "अभियान" कविता इस संग्रह की सबसे जोरदार कविता है।

आशा है, हिन्दी पाठकों को यह संग्रह पसंद आयेगा औ वे इन नई प्रतिभाओं के श्रम का स्वागत करेंगे।

OUP—68—11-1-68—2,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81·08 B39N Accession No. H 3597

Author बेचन, विष्णु प्रभाकर, संपा.

Title नई प्रतिभाएँ. 1956.

This book should be returned on or before the date last marked below.

सर्वाधिकार कवियों के अधीन सुरक्षित

प्रथम संस्करण

आवरण चित्रकार—
श्री पशुपति नाथ झा 'नेपाली'
देवानन्दपुर, भैरवा, नेपाल

वितरक—
(१) भारती प्रकाशन, भागलपुर-२
(२) प्रगतिशील लेखक-संघ, भागलपुर-२

सन् १९५६ फरवरी] [मूल्य—१=)

मुद्रक—
श्री शकर लाल बाजोरिया
दि एलाइड प्रेस,
भागलपुर-२

अनुरोध और आभार

इस काव्य-संकलन को प्रकाशित करने की योजना, आज से करीब एक वर्ष पूर्व, मैंने बनाई थी, पर कतिपय कारणों और अड़चनों से उस समय इसका प्रकाशन न हो सका ! आज जब यह पुस्तक आपके समक्ष है, मैं हर्ष से फूला नहीं समाता ! कारण स्पष्ट हैं—(१) इस प्रकार के संग्रह के प्रकाशन में किसी भी साधारण पुस्तक के प्रकाशन की अपेक्षा अधिक कठिनाई होती है। (२) इस संग्रह के द्वारा हम इस अंचल में फैले कतिपय प्रतिभाशाली कवियों से हिन्दी-जगत् को परिचित करा रहे हैं। (३) इस संग्रह के प्रकाशन से अब एक प्रकार की प्रकाशन रुचि हम में जाग रही है और भविष्य में हम इसी "नई प्रतिभाएँ" शीर्षक क्रम में इस अंचल के प्रतिभाशाली लेखकों की रचनाएँ–कहानी, एकांकी, निबंध इत्यादि को प्रकाशित करेंगे। इसके लिए हम पाठकों, प्रकाशकों, साहित्य-प्रेमियों एवं साहित्य-कारों के सहयोग की अधिकाधिक मांग करते हैं। वे हम से सहयोग लें और हमें सहयोग दें, तभी हिन्दी और आज का साहित्य बढ़ेगा, तथा साहित्यकारों एवं पाठकों का व्यापक कल्याण होगा।

इस पुस्तक के आवरण चित्रकार भाई श्री पशुपतिनाथ

श्री 'नेपाली' एवं मित्रवर प्रो० कृष्णानन्द बहादुर के हम विशेष-रूप से आभारी हैं, जिन्होंने हमें समय पर काफी सहायता दी।

इसके साथ ही साथ मैं हिन्दी के विद्वानों एवं पाठकों से अनुरोध करूँगा कि वे इस पुस्तक के सम्बन्ध में जो कुछ भी अपनी राय रखते हों उसे अवश्य प्रगट करने का प्रयास करें! उनके विचारों से 'नई प्रतिभाओं' को सीखने का अवसर मिलेगा।

खेद की बात केवल यही है कि कतिपय कारणों से कुछ और प्रतिभाशाली कवियों को हम इस संग्रह में स्थान न दे सके, फिर भी मुझे विश्वास है कि आप अवश्य इस संग्रह का स्वागत करेंगे।

—विष्णु किशोर बेचन
सम्पादक

भूमिका

"नई प्रतिभाएँ" शीर्षक संकलन की पहली पुस्तक का हिन्दी संसार द्वारा स्वागत् होगा, ऐसी आशा हम करते हैं। इस पुस्तक में आठ नए कवियों की रचनाएँ संकलित हैं। इन कवियों में से एक के अतिरिक्त (श्री उपेन्द्र जी) और सभी तरुण हैं और उनकी रचनाओं में काव्य-प्रतिभा का निश्चित संकेत है। नई प्रतिभाओं को साहित्य-संसार में स्थान प्राप्त करने के लिए अकसर भारी संघर्ष करना पड़ता है। कुछ तो हतोत्साह हो कर मौन ही हो जाती हैं। "नई प्रतिभाएँ" के समान संकलन उगते हुए लेखकों की ओर साहित्य-जगत का ध्यान खींच कर महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

इस संकलन के कवियों की वाणी में गीत की मधुर तान है, मिट्टी की सुगंध है, अदम्य आशा और उल्लास है। वे सभी पीड़ित धरती के लिए एक नए स्वर्णिम प्रभात का स्वप्न देखते हैं :—

अँधियाली जा लोप हुई, गहरी पर्वत घाटी में
गड़े बीज के अंकुर फूटे, खेतों की माटी में—"(उपेन्द्र)

यह सभी कवि एक ही अंचल के निवासी हैं। उनमें से कुछ संथाल परगना के हैं, कुछ भागलपुर के, किन्तु इन सभी कवियों की रचनाएँ धरती की सौंधी गंध से सुवासित हैं। एक कवि लिखते हैं :—

"गाँव से कुछ दूर, चलते जा रहे मजदूर
सोने खेत—"आरों" पर
कि जिसमें धान कटते थे, सुबह से शाम तक कल ही।
जाते जोगने को नाज, जिसपर देश पलता है,
कि जाते जोगने को स्नेह, जिससे दीप बलता है।" (मधुसूदन)

संकलन के कुछ कवियों ने मुक्त छन्दों का प्रयोग भी किया है। हमें संकलन की सब से सफल रचनाओं में गीत ही लगे। मुक्त-छन्द का एक उदाहरण देखिए :—

"समुद्र की तेज लहरों पर तैरते जहाज को
रोक कौन सकता है !
मानवता कभी हार नहीं मानती !
अब शायद किनारा करीब है
मैं जन कोलाहल सुन रहा हूँ,
शायद वे 'शान्ति' का 'कोरस' गा रहे हैं,
खुशियाँ मना रहे हैं—" (बेचन)

"नई प्रतिभाएँ" के कवि सामाजिक प्रगति की शक्तियों में आस्था रखते हैं। वे साहित्य का प्रयोग सामाजिक उत्थान के हित में करना चाहते हैं। इनका दृष्टिकोण स्वस्थ और मानवतावादी है। आज पाश्चात्य पतनोन्मुखी साहित्य के कुछ अन्ध-भक्त हिन्दी में प्रतिक्रियावादी नारे बुलन्द कर रहे हैं। वे साहित्य को कुत्सित मनोविकारों का उत्तेजक बनाना चाहते हैं। "नई प्रतिभाएँ" स्वस्थ, सामाजिक विचार-धारा अपना रही हैं, यह हर्ष की बात है। यही मार्ग भारतीय साहित्य का प्रशस्त मार्ग है। इसी मार्ग पर हमारे महान पूर्वज, सन्त कवि, भारतेन्दु, 'प्रसाद', प्रेमचन्द और छायावादी कवि चले थे। इसी परम्परा का विकास आज के प्रगतिशील लेखक, राहुल, यशपाल, भगवतशरण उपाध्याय, अमृत राय, नागार्जुन, अश्क, सुमन और रांगेय राघव आदि कर रहे हैं।

इलाहाबाद।
४ फर्वरी, १९५६

प्रकाशचन्द्र गुप्त

नई प्रतिभाएँ

आधुनिक काव्य-मूल्य स्पष्टतः द्वितीय विश्व युद्ध के बाद मान्यता प्राप्त कर सके। उक्त काव्य-मूल्य के आधारफलक पर इस संग्रह के कवि खड़े हैं। इनका महत्व काव्य की संपूर्ण अभिव्यक्ति से ही है। इन कवियों की विचार-धारा नयी, स्वस्थ और जनवादी है। इनके काव्यों में सचाई है, इसलिए इनका काव्यात्मक महत्व है और इनके युग की तुलना भक्ति-काल के उस अगाध सांस्कृतिक पुनर्जागरण से की जा सकती है, जिसके आधारफलक पर विद्यापति, तुलसी, कबीर, सूर ऐसे सांस्कृतिक कवियों का आगमन हुआ।

इस संग्रह के सभी कवि नये मूल्य के नये हस्ताक्षर हैं। इन्हें नवीन काव्य के द्वितीय चरण के कवि भी माना जा सकता है, जिनकी चेतना सन् १९५० ई० के बाद अधिक प्रबुद्ध और समृद्ध हो पाई।

नवीन काव्य के द्वितीय चरण से मेरा तात्पर्य है—छायावाद, प्रगतिवाद और तथाकथित प्रयोगवाद के बाद द्वितीय उत्थान के कवि। इसलिए जान-बूझ कर "नई प्रतिभाएँ" नाम से इनका परिचय दिया जा रहा है। वास्तव में विचार, भाषा, भाव सभी दृष्टि से ये नवीन के पृष्ठ-पोषक और उत्तराधिकारी हैं।

ये कवि अपने आप सुलझे हुए हैं और मानव जीवन की समता में विश्वास करते हुए, आज के वर्ग-वैषम्य को मूलतः दूर करने के पक्ष में हैं, यही कारण है कि जहाँ इनमें परंपरा का विकसित संस्कार है, वहीं इनमें व्यावहारिक भाषा प्रयोग के साथ-साथ नवीनता का अनगढ़ प्रयोग और स्वर भी सहज में ही सुनाई पड़ता है; पर जनता इन्हें प्यार करती है, कवि-सम्मेलनों एवं स्थानीय जीवन में इनकी पूछ है।

संग्रह के अग्रज एवं प्रौढ़ कवि श्री उपेन्द्र जी हिन्दी के प्रगतिशील कवि हैं। प्रचार की दुनियाँ से दूर ये हिन्दी के मौन साधक हैं। इनके लिए काव्य-जीवन का अभिन्न अंग हो कर भी कर्त्तव्य नहीं, पर कविताओं में जीवन की विराट अभिव्यक्ति है, जिसके पीछे परम्परा की अगाध धारा है तो आगे विशाल सांस्कृतिक नव जागरण की प्रसव-पीड़ा भी। कहीं निराशा का अभेद्य साम्राज्य है तो कहीं करुणा मिश्रित नव विहान का आलोक प्रसार—

"विजन घाटियों में भी अब है, नहीं एक तृण सोया।

× × ×

राज मार्ग पर उतर गये, जागरण मौन धरती के"

छाया और प्रगति दोनों युग का सामंजस्य इनकी कविता की मूल प्रवृत्ति है। फलतः परंपरागत संस्कार किसी न किसी रूप में अपनी अभिव्यक्ति के लिए छटपटाते ही रहते हैं। इसी-लिए इनकी कविता का विश्लेषण करते हुए उसे "क्लैसिक जनवादी" कविता कहा जा सकता है।

उपेन्द्र जी का काव्य-वैभव कितना प्रौढ़ एवं परिष्कृत है इसका परिचय उनकी कुछ कविताओं (यथा पृथ्वी और स्वर्ग, खंडहर, उर्ध्वगामी शिलाखंड इत्यादि) से ही स्पष्ट हो जायेगा। विशेष कर इनके गीतों के अध्ययन से तो यह दृढ़ता से कहा जा सकता है कि हिन्दी की नई पीढ़ी (जिसे मैंने पहले ही नवीन काव्य का द्वितीय चरण कहा है) के ये सफल गीतकारों में हैं। उनके गीतों में जन जीवन की करुणा, वेदना, आशा, निराशा की प्रतिच्छाया है, उसमें लोकगीतों का स्वर संगीत, नृत्य और ताल है। इसीलिए हृदय की वाणी शास्त्र के बंधन में पड़े गीतों की तरह कराह नहीं रही। भाषा की स्पष्ट सफल अभिव्यक्ति भी दर्शनीय है। कवि अपने गीतों के द्वारा आजकी बदहाली, गरीबी और मायूस परिस्थिति को भी मिटा डालने के लिए नये जीवन का आह्वान करता है, क्योंकि आज का मरनोन्मुख समाज दम तोड़ रहा है—

"ले रहा निशान्त श्रान्त सांस आखरी"

और—*"नया युग आ रहा धरता चरण मुखरित तरंगों पर।"*

नामों के बटखरे से इनकी प्रतिभा को तौलना जरा कठिन है।

संग्रह की कविता में समाजवादी नवीन क्रान्ति की आवाज के साथ-साथ 'रहस्यमयी' स्वर भी सुनाई देते हैं। कुछ कवियों में मूलतः व्यक्तिवादी यथार्थ का गहरा रंग है, जो हमारे हृदय को क्षण भर में ही स्पर्श कर लेता है। ऊपर से

देखने पर इनका कोई संबंध वाह्य जीवन से नहीं जान पड़ता पर ये हमारे वस्तु जगत के नित्य जीवन व्यापार से संबंध रखते हैं या यो कहें कि ये भावनाएँ उसी की एक प्रतिक्रिया है। फलतः उपर्युक्त तीनों धाराएँ हमारे जीवन के विभिन्न आयाम हैं, जिसका प्रेरणा-श्रोत एक है—शैलियाँ भिन्न-भिन्न।

श्री बिलास बिहारी में उपर्युक्त तीनों संभावनाएँ अपना विकास पा रही हैं। यह भी एक आश्चर्य और विस्मय की बात है कि एक ही कवि में एक साथ तीन प्रकार की अभिव्यक्ति बड़ी सफलता से हो पायी है। बिलास का जीवन क्रम सूक्ष्म सत्ता (जिसके अस्तित्व में मुझे तनिक भी शायद विश्वास नहीं है) की खोज में जहाँ इधर-उधर भटक रहा है, ठीक उसी क्रम में वह एशिया में होने वाली गत जन-क्रान्ति और संभावित समानता के संघर्ष का स्पष्ट अनुभव भी करता है—

"चारो ओर मनुज जागा है
आज एशिया अंगड़ाता है
उठा, शान्ति की सौम्य पताका, नये तराने अब गाने दो।"

मधुसूदन और खगेन्द्र संग्रह के अति नवीन और प्रतिभाशाली कवि हैं, जिनके भविष्य में हमें पूरा विश्वास है। मधुसूदन में वैयक्तिक भावना अर्थात् वैयक्तिक सुख-दुख अभिव्यक्ति पाना चाह रहे हैं और इस सुख-दुख को समाप्त करने के लिए आज के जीवन से अधिक बेहतर जीवन की स्वीकृति भी पाना चाह रहे है, पर मधुसूदन ने जहाँ 'नवीन' की ये स्वीकृति अपने जीवन-संघर्ष से पायी है, वहाँ खगेन्द्र ने

इसे विश्व के घात-प्रतिघात और राजनैतिक परिवर्त्तनों के वैज्ञानिक अध्ययन से ग्रहण किया है। यों कहा जा सकता है कि बौद्धिक वर्ग की समष्टिचेतना खगेन्द्र जी का चिन्तन-क्रम है—इसलिए उनकी कविता में मात्र आवेग को स्थान नहीं, युग-सत्य की आवाज है—

"अब शान्ति न्याय का प्रखर सूर्य्य जन पथ से चलने वाला है"

× × × ×

और मधुसूदन भी अपने जीवन-अध्ययन से यह लिखने के लिए मजबूर हैं—

"समय के ही रथ पर आसीन
आ रहा नूतन नवल बसंत"

कवित्रय श्री महेन्द्र, ऋषि और रणजीत में भाषा का व्यावहारिक प्रयोग दर्शनीय है। जिस वातावरण और जीवन की कविता है, केवल उसी जीवन के "शब्दों के आधार पर कविता का भाव चित्र तैयार करना"—बहुत बड़े काव्य कौशल और प्रतिभा का परिचायक है। साथ ही साथ वैयक्तिक इन्द्रयानुभूति से ओत-प्रोत ये कविताएँ प्रकृतिवाद का सुन्दर उदाहरण हैं। "इन प्रयोगों में हलकी व्यंगात्मिकता, उपहास की वृत्ति, तटस्थ और मार्मिक वस्तु चित्रण, तथा छन्द रहित और लय रहित गद्यात्मक-भाषा-योजना की विशेषताएँ है।"

श्री परशुराम मोदी एवं श्री रामप्रकाश सिंह की कविताओं में ओज है। आज के उत्पीड़न के फलस्वरूप जो विष जन-जन में व्याप्त हो गया है, उसकी अभिव्यक्ति इनकी कविताओं

में हुई है, साथ ही साथ इस उत्पीड़न को मिटा डालने का संकल्प भी इनकी वाणी में है।

अपनी कविताधारा के संबंध में कुछ भी कहना खतरे से खाली नहीं है। इसलिए मैं अपने संबंध में स्वयं कुछ न कह कर केवल मित्रों के आग्रह को रखने के लिए 'रजनी गंधा' (जिस पुस्तिका में द्विजेन्द्र-गोष्ठी के दस कवियों की रचनाएँ संकलित हैं) के परिचय लेखक प्रो० केदार राम गुप्त की बातें ही दुहराना चाहता हूँ, जिसे उन्होंने मेरे संबंध में कहा है—"युग का संक्रमण कलाकार की अनुभूतियों को सिहरा कर द्वन्द्व के उस गवाक्ष पर ला कर बैठा देता है, जहाँ से एक नजर हमारा कलाकार मानव जीवन के चिरन्तन सत्य संस्कारों और विकारों की ओर देखता है और दूसरी नजर वह युग के शोषण से उद्भूत क्रंदन और कराहों की ओर डालता है।.....

"पुरातन मान्यताओं की अपेक्षा आधुनिक समर्थताओं की ओर उन्मुख हमारा कलाकार अपने में संभावनाओं का वैभव छिपाये साहित्य-सृजन के पथ पर निरन्तर अग्रसर है। वह 'पुरातन क्षार' नहीं देना चाहता, नवीनता का अनन्त वैभव देना चाहता है।"

अगर इस संक्षिप्त भूमिका से मेरी कविता को समझने में कुछ भी सहायता मिले तो मैं अपने को भार-मुक्त समझूँगा।

कुल मिला कर मेरा विश्वास है कि "नई प्रतिभाएँ" से युग-जीवन को उत्साह मिलेगा तथा आज के कुंठित साहित्य की कुंठा मिटेगी।

—विष्णु किशोर 'बेचन'
संपादक

उपेन्द्र नारायण चौधरी

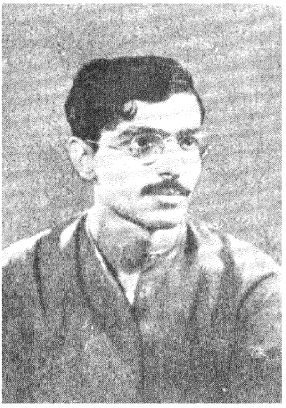

विष्णु किशोर 'बेचन'

मधुसूदन प्रसाद

बिलास बिहारी

ले रहो विदा विभावरी

ले रही विदा विभावरी, खोल आँख, नींद से भरी।
अब न रात, पूर्ण विश्व स्वर्ण स्नात्, द्वार खोल, भैरवी खड़ी।
सिन्धु में उठा हिलोर,
फूल से सजा दिशा दिशा की एक-एक मोड़
रन्ध्र-रन्ध्र से सुधा बिखेर
गंध में बसा वितान, काकली की छेड़ तान
फूँकता प्रभात बाँसुरी।
ज्योति की लगा हिंडोल, व्योम में प्रवाल घोल
मुक्त कर हरीतिमा अशेष।
धुन सवाँर, लय निखार, जागरण की छेड़ तार,
खोलता प्रसून पंखुरी।
चूम चूम एक एक फूल की उभार
अश्रु में बसा वयार की असीम ज्वार
कक्ष कक्ष के गवाक्ष की भिगा दुकूल
ले रहा निशान्त-श्रान्त-साँस आखरी।
भीषिका हटा, मिटा प्रदोष की प्रदाह,
छन्द में जगा समस्त गेल, वीथि, राह,
प्राण-प्राण में अनन्त चेतना उड़ेल
जोड़ती उषा, विकास की कड़ी-कड़ी

✠ ✠

नया मधुमास आता है

नया मधुमास आता है
तृणों में सुगबुगाता है
हवा में गुनगुनाता है
गगन में मुस्कुराता है
नया मधुमास आता है

दबाते पैर से 'दिग्पाल' पुलकित शुभ्र अम्बर को
बुझाते 'इन्द्र' विष के वाण से मधु के बवंडर को
'मरुत' मधु सुरभि में भय का प्रलय-आक्रोश भरता है
कुचलते 'शेष' धरणी के नये-उभरे-हुए-स्वर को
'शिशिर' दावाग्नि वन कर विपिन में हलचल मचाता है।
धरा पर फैलते जाते नये युग के नये शतदल
बुझाते जा रहे विष-रोष कोषों में अमृत भर भर
पिरोते जा रहे अमराइयों में विशिख की ज्वाला
संजोते जा रहे पुरवाइयों में लोक का मंगल
मुखर उल्लास धरणी का सुरभि वन मुसकुराता है।
हमारी ओ दबी उम्मीद! फूलों में उभर आओ
युगों की ओ सुलगती प्यास!! सौरभ में बिखर जाओ
नया युग आ रहा धरता चरण मुखरित तरंगों पर
उमड़ता आ रहा है मोद का सागर कछारों पर
मृदुल अंगड़ाइयों में गगन का पथ जगमगाता है।

किरण-विहग

गगन विपिन में 'किरण-विहग' पंचम में बोल गये
ज्योति विहीन हुए, सारे—
दीपक ऊँचे महलों के
सुरभि फूट कर फैल गये
पंकज के तरुण दलों के
नील गगन से टकराये
धरणी के मंथर-गोरज
तरुणाई में जाग उठे
प्राची के बालक-सूरज
नये शस्य के बाल धरा के पतझड़ दोल गये
गगन विपिन में किरण-विहग पंचम में बोल गये
अँधियाली जा लोप हुई
गहरी पर्वत घाटी में
गड़े बीज के अंकुर फूटे
खेतों की माटी में
हिंडोलों में झूम उठे
तृण, तरु के मुखरित पल्लव
शोणित श्लथ हो उठे
गगन के नक्षत्रों के वैभव
तुहिन कणों पर मलय प्रभंजन कंचन घोल गये
गगन विपिन में किरण-विहग पंचम में बोल गये

विजन घाटियों में भी अब है
नहीं एक तृण सोया
नहीं, एक भी पत्ता अब है
बिना किरण का धोया
राजमार्ग पर उतर गये
जागरण मौन धरती के
ज्योति किरण में विहँस उठे
पगचिह्न प्रयाण-व्रती के
एक एक बन्धन तन्द्रा के जीवन खोल गये
गगन विपिन में किरण-विहग पंचम में बोल गये

किन्तु रहे सोये अब तक हम
ऐसे हाय अभागे !
रवि के तूर्य बजाने पर भी
नहीं अभी तक जागे
अधर सूख कर विरस हो गये
स्वप्न सजीले टूटे
अपने सारे हमराहों के—
साथ, हाथ से छूटे
क्षितिज-छोर पर पहुंच कृती के गति-किल्लोल गये
गगन विपिन में किरण-विहग पंचम में बोल गये

मन के मेघ झरो

झरो गगन से अमृत बन कर
मन के मेघ झरो
मेरे जग के मधुचक्रों में
मृदुल मरंद भरो
मन के मेघ झरो।

झरो वनों में मधु वसन्त बन
आंगन में सुरधनु का शोभन
जन-जन में बन जीवन-स्पन्दन
कूप, तड़ाग भरो
मन के मेघ झरो।

सरि, सरिता में झरो लहर बन
नगर, गाँव में मधुकर गुंजन
खग, मृग में संगीत ताल बन
रसमय धरा करो
मन के मेघ झरो।

अमृत बने तेरी फुहार यह
घृत, मधु तेरी प्रखर धार यह
बन कर मृदुल पुलक तृण-तृण की
शीतल धरा करो।
मन के मेघ झरो।

***

मधुसूदन प्रसाद

मधुसूदन प्रसाद—जन्म १९३४ ई०।

जन्म-स्थान—संथाल परगना।

ग्राम—धमसाईं, पो०—गोड्डा।

पेशा—फिलहाल पढ़ने का ही।

लिखने-पढ़ने की रुचि तब से है, जब से इस दुनियाँ को समझने लगा।

सन् १९५२ में पहली रचना कहानी के रूप में प्रकाशित, और कुछ गीत भी।

अप्रकाशित की संख्या बहुत कुछ है।

कविता के संकट को समझते हुए भी ज्यादातर कविताएँ ही अच्छी लगती हैं।

उम्र छोटी, पर करने और कहने को बहुत कुछ है।

अपने मित्रों एवं साहित्यिक बंधुओं की टीका-टिप्पणियों से डरता तो नहीं, तिलमिला उठता हूँ जरूर!

नजरें बराबर आगे की ओर रहती हैं, पर पीछे को बिलकुल भूलना भी अच्छा नहीं लगता—इसे संस्कार मानें या सीखने की ख्वाहिश!

युवक हूँ तो आशा भी है, और आज की दुनियाँ को बदल डालने का विश्वास भी, चाहे साहित्य से हो या.....।

दिवंगत माता के प्रति

शैशव मेरा सहला न सकी।
जब मधुर अंक में प्रथम बार
निरखा मैंने अग-जग प्रसार
धर मेरे छोटे चपल हाथ, चलना मुझको सिखला न सकी।
मुझमें संचित अरमान अमर
जल चुकी मधुर मुस्कान अपर
जग-स्वार्थ-ज्वाल से जली देह, स्नेहांचल से दुलरा न सकी।
दुनियाँ देती है मुझे गरल
पीता जाता मैं मचल-मचल
मम चिर मचले बचपन को माँ, तुम चूम-चूम बहला न सकी।
मैं विश्व-व्योम का एक विहग
चलते-चलते दुखती रग-रग
अब तो मंजिल बतला दो माँ, पहले तो तुम बतला न सकी।
मैंने सैनिक का वेश लिया
जग-रचने का उद्देश्य लिया
"होगी अब विजय तुम्हारी ही" यह आशिष दे तुम जा न सकी।
शैशव मेरा सहला न सकी।

✠ ✠

पथगामी

पथ पर निश्चल बढ़ता जाता।
काली रजनी कच खोल सघन
पथ पर पगली-सी है आती,
श्रम-चूर सुहागिन वसुधा भी
तम फलक तान तब सो जाती,
ले प्रात किरण की आश अमल, तब भी पग-पग धरता जाता।
पथ पर निश्चल बढ़ता जाता।

सागर की लोल लहर से जब
झंझा का आलिंगन होता,
तट के बूढ़े चट्टानों पर—
जब ज्वारों का नर्तन होता,
तब भी दिल में उत्साह लिए, तूफानों में हँसता जाता।
पथ पर निश्चल बढ़ता जाता।

आतप की तप्त किरण से जब
धरती भट्ठी-सी जल उठती,
नवजात हृदय के टुकड़े को
माता ले खेतों पर खटती,
भूखे बच्चों के साथ आश-मधुमास लिए बढ़ता जाता।
पथ पर निश्चल बढ़ता जाता।

भूखे मानव की अरथी पर
दो हाथ कफ़न के भी लाले,
पर हड्डी तक को चूस-चूस
बनवाते सुन्दर 'दो शाले,'
वैषम्य न्याय की चक्की में मानव-मानव पिसता जाता।
पथ पर निश्चल बढ़ता जाता।

महलों की कलुषित छाया में
जब मानवता सिसकी भरती,
पापी सामाजिक घातों से
तरुणी यौवन बेचा करती,
तब नयनों में अंगार लिए हर क्षण, हर पल चलता जाता।
पथ पर निश्चल बढ़ता जाता।

जब जंग लगी तलवारों का
शोणित से जंग छुड़ाते हैं,
बच्चों के प्राणों की बलि दे,
आजादी-दिवस मनाते हैं!
मैं उर में शत हुँकार लिए विप्लव का पद गढ़ता जाता।
पथ पर निश्चल बढ़ता जाता।

पर मन में यह विश्वास अमर
पतझड़ में फूल खिलाऊँगा।
अब तोड़ विषमता की बेड़ी
निर्भय-इंसान बनाऊँगा!
समता के सूरज अभिनन्दन, मैं 'अमन'-छंद रचता जाता।
पथ पर निश्चल बढ़ता जाता।

***

रिझाऊँ कैसे तुमको मीत ?

रिझाऊँ कैसे तुमको मीत ?
उषा के सस्मित कलित कपोल, मलय मृदु से प्लावित तरुपात।
विहंगम गाते पंख पसार—किन्तु मम हृदय व्यथा से स्नात्।
विहँस लूँ कैसे भूल अतीत ?

अमल नीलाम्बर से राकेश, लुटाता विद्रुम-रश्मि अपार।
सुधा से सिक्त सृष्टि के अंग, जलन का पाता पारावार।
कल्पना के टूटे संगीत।

हुए पीले किसलय सुकुमार, झड़े परिमलमय मुकुलित फूल।
विजन में ठूँठ खड़े अवशेष, झलकते उभरे-उभरे शूल।
शुष्क उपवन के मेरे गीत।

अनय संघर्ष प्रलोभन बीच, तड़पती सुषमा रम्य महान।
लिए अन्तर में दाह-अथाह, सिसकते छन्दों के अरमान।
भविष्यत् में मानव की जीत।

समय के ही रथ पर आसीन, आ रहा नूतन, नवल वसंत।
लुटाता सौरभ, मृदु मकरंद, छिड़कता कुँकुम पूर्ण दिगन्त।
धरा पर फैलेगा नवनीत।
रिझाऊँगा तब तुमको मीत!

* * *

नहीं भिनसार नूतन दूर !

गाँव से कुछ दूर, चलते जा रहे मजदूर
सोने खेत—"आरों" पर
कि जिसमें धान कटते थे, सुबह से शाम तक कल ही।
जाते जोगने को नाज, जिस पर देश पलता है,
कि जाते जोगने को स्नेह, जिससे दीप बलता है।
पहरुवे जागरुक, अब हैं
लुटेरे हो रहे मजबूर।
जगने जा रहे मजदूर।
रजनी पूस की मासूम
सर्दी में सिकुड़ती है,
किसानों के कलेजों पर
हिमानी बूँद पड़ती है।
बिताते रात आँखों में
सुबह तक घेर ही कर 'घूर'।
जगने जा रहे मजदूर।
जमा विश्वास ऐसा है कि
होगा प्रात कल स्वर्णिम,
इसी पर जी रहे कर्मी—
"हँसेगी धूप दूबों पर
मिलेगी गात में गर्मी,
नहीं भिनसार नूतन दूर !" जगने जा रहे मजदूर !

***

बिलास बिहारी

जन्म-काल—२८ मार्च १९३४ ई०, रचना काल १९५२ ई०।
जन्म-स्थान (निवास)—भागलपुर जिला का रामपुर डीह ग्राम।

बचपन से ही रचनाएँ करता था। उस समय अधिकतर कविताएँ मैंने अपनी माँ के ऊपर ही बनायी थीं। कविता सुनाने के बाद देखता कि माँ की आँखों में आँसू छलक जाते। मुझे संतुष्टि मिली थी कि मैं कविताएँ लिख लेता हूँ। १९५२ की जीवन-व्यापी एक घटना ने साहित्यिक बनने को मजबूर कर दिया, तब से रचनाओं का संग्रह प्रारंभ। इसके अतिरिक्त भक्तिमयी मामी, अपनी माँ और मित्रों में 'बेचन' जी, केप्टन, मधुसूदन, और नागेश्वर आदि द्वारा इस ओर बढ़ने के लिए काफी उत्साहित होता रहता हूँ।

रचनाएँ मैं करता हूँ—ऐसा नहीं समझता, मुझसे रचनाएँ होती हैं, ऐसा मानता हूँ। मैं देखता हूँ—कोई है जो मुझ से सभी कार्य कराता है। इसीलिए सीधे ढंग से अपनी अनुभूति, बिना किसी छल-कपट के, लिख डालता हूँ। मुझ में दुर्बलताएँ हैं और कुछ सबलताएँ भी। प्रकृति-प्रेम और वेदना से भी प्रभावित होता हूँ। समाज की गिरी अवस्था, विषमता; आज की भयंकर समस्या-गरीबी, भुखमरी तथा सड़कों, गलियों के किनारे पड़े अभागों को कैसे भुला दूँ ? उनकी कल्याण-कामना करते हुए, विषमता का सर्वनाश करने के लिये एक नयी क्रान्ति का आह्वान भी करता हूँ—

गीत

बरसो रे नभ के नव बादल।
भूतल पर आकर बरसो रे॥

जलन-ज्वाल संताप मिटाए
अणु-अणु के अंतर सरसाए
सुधा-युक्त अपनी धारों से
सूखी धरती पर बरसो रे।

सरिताएँ सब सूख रही हैं
वारि बिना यह शुष्क मही है
अपनी मूसलधार वृष्टि से
सूखी वसुधा को भर दो रे।

जागृति-हीन जगत सोया है
निज अतीत वैभव खोया है
अपने वज्रनाद से जलधर
मनुजों में जागृति भर दो रे।

पतन-भँवर में जग है घिरता
स्वर्ग आज रौरव में गिरता
स्वर्ण-द्वीप फिर इसे बनाने
धाराधर भू पर उतरो रे।

बरसो रे नभ के नव बादल
भूतल पर आकर बरसो रे॥

* * *

गीत

सन् सन् सांध्य-पवन पूरब से, हौले हौले डोले।
रजकण की उड़ती पंखुड़ियाँ
नभ में छाईं मुक्तक लड़ियाँ
चाँदी-सी चकमक, जीवन को मादक रस में घोले।
सन् सन् सांध्य-पवन पूरब से, हौले हौले डोले ॥१॥
धरती से आकाश मिला है
अमर प्रेम आभास मिला है
चिर अशान्तिमय जिसका जीवन, प्रणय-कथा क्या बोले।
सन् सन् सांध्य-पवन पूरब से, हौले हौले डोले ॥२॥
गोधूली का ललित गगन है
दिवा-निशा का मधुर मिलन है
जीवन के इस रम्य मोड़ पर, कर्मलीन जग हो ले।
सन् सन् सांध्य-पवन पूरब से, हौले-हौले डोले ॥३॥
सरस सांध्य-मारुत जीवन का
हो प्रेरक चिर उत्सुक मन का
जग के कज्जलमय अन्तर को, करुणा जल से धो ले।
सन् सन् सांध्य-पवन पूरब से, हौले हौले डोले ॥४॥
जगन्नियन्ता तेरी माया
रुचिर अलौकिक तेरी छाया
तव प्रसाद से सिक्त विश्व यह, जीवन का पट-खोले।
सन् सन् सांध्य-पवन पूरब से, हौले-हौले डोले ॥५॥

***

गीत

युग-युग से तू प्यार लुटा कर, आज मिटाने क्यों आये ?
जनम-जनम से सब कुछ खोकर
तूने प्यार निभाया
मेरे अन्तस्तल में तुमने
आकर दीप जलाया।
अपने हाथों ज्योति जलाकर, आज बुझाने क्यों आये ?
मन्द पवन बह जाता रह रह
औ' तूने सहलाया
प्यार भरी मीठी थपकी दे
अन्तरतम बहलाया।
अपने हाथों सेज सजाकर, आज उठाने क्यों आये ?
भींगीं-भींगीं शरद्-निशा में
चन्द्र-किरण बन आये
दोनों हाथों अमिय लुटाकर
जीवन-धन तू लाये।
अपने हाथों सुधा पिलाकर, गरल पिलाने क्यों आये ?
बाट देखता था मैं दुर्बल
तेरी आस लगाये—
आँख मिचौनी करते निष्ठुर
तुम पीछे से आये।
अपने हाथों जीवन देकर, प्राण छीनने क्यों आये ?

✠ ✠

गीत

जलता है जीवन जलने दो, आँखों से आँसू बहने दो।
कंटकमय दुनियाँ की राहें
अन्तर से आती हों आहें
फिर भी सूजी आँखें लेकर होठों को मुस्का लेने दो।
आँखों से आँसू बहने दो।
जीवन को वरदान दिये चल
जगती का अभिशाप पिये चल
आज विषमता पूर्ण विश्व को नये रूप में ढल लेने दो।
आँखों से आँसू बहने दो।
आज नहीं तो कल बदलेगी
सड़ी-गली दुनियाँ उलटेगी
मिटा भयंकर काल-रात्रि को, एक नवीन भोर आने दो।
आँखों से आँसू बहने दो।
चारो ओर मनुज जागा है—
आज एशिया अँगड़ाता है
उठा शान्ति की सौम्य पताका, नये तराने अब गाने दो।
आँखों से आँसू बहने दो।

विश्व-दर्शन

विश्व के कण-कण में हूँ आज, निरखता तेरा रूप उदार।

स्वर्ग की गोदी में मुस्कान, लिये सूरज की किरण महान्।
निकल तुम आते मेरे देव, बनाते जगती को कियमाण।
उसी स्वर्णिम आभा के बीच, विहँसते हो शिशु-सा सुकुमार।

सांझ के धूमिल नभ में नाथ, बने आते हो तुम राकेश।
स्निग्धता, शीतलता, विश्राम, शांति का देते तुम आदेश।
निशा-रानी के प्रांगण बीच, तुम्हीं को पाता प्राणाधार।

जलधि की ऊर्मि-ऊर्मि में देख, तुम्हारे रुचिर प्रेम की राशि।
हृदय में पीर, मिलन की हाय, उमड़ने लगती है सोल्लास।
उसी तीखेपन में हे देव! तुम्हीं हो लिये प्रणय का भार।

सुधा से पूर्ण सुमन का देश, मधुप बन करते हो तुम गान।
वेदना, विरह लिये असहाय—कोकिला छेड़ रही है तान।
धन्य करुणामय तेरा प्रेम, सुनाता है यह करुण पुकार।

प्राच्य आलोकित हुआ प्रभात, सांझ में डूबी वह छाया।
सृष्टि का कैसा अनुपम रूप, विमोहित करती-सी माया।
निखिल जगती में हो साकार, दिखाते हो मोहक शृंगार।
निरखता तेरा रूप उदार।

खगेन्द्र प्रसाद ठाकुर

जन्म–१६३७ ई०, स्थान—ग्राम—मालिनी, पो० गोड्डा (संथालपरगना)। नया हूँ—इसलिए नयी प्रतिभाओं में अपने को मानकर गौरवान्वित हूँ। १६५० ई० से ही कविता, कहानी और समीक्षा लिखने के अतिरिक्त 'एडीटरी' तक की है।

दूर देहात में रहता हूँ, गांव बड़ा प्यारा है।

धान के खेतों और अमराईयों को देख कर साहित्य भी भूल जाता हूँ।

विद्यार्थी हूँ, अभी आगे कुछ दिनों तक रहना ही पड़ेगा।

कविता को केवल कविता ही नहीं मानता, युग की अभिव्यक्ति और युग की आवाज भी मानता हूँ। निःसंदेह कलात्मकता की सीमा को तोड़ डालना अच्छा नहीं समझता।

अभी प्रगतिशील लेखक-संघ का उप-मंत्री हूँ, पर विचार कभी प्रतिक्रियाशील भी नहीं रहा। साहित्यिक संस्थाओं से प्रेम है—वशर्ते कि वहां कुछ रचनात्मक कार्य होता रहे।

दुनियाँ में जो चीजें हैं, वे सभी अच्छी लगती हैं—केवल बुरी चीजें ही बुरी लगती हैं।

बोलता बहुत कम हूँ, पर जो बोलता हूँ—वह सच और ठोस, ऐसा लोग कहते हैं—इसीलिए बहुतों का प्रियपात्र हूँ और बहुतों का कोप-भाजन भी।

अन्याय देखकर तिलमिला उठता हूँ, इसीलिए कभी कभी अपने 'स्वाधीन शासन' के प्रति भी घृणा होती है।

नव प्रात

अब पूर्व क्षितिज का द्वार खोल
नव प्रात निकलने वाला है।
नव तरुण किरण की लहरों से
संसार निखरने वाला है।

नूतन-नूतन संदेशों से
दिशि-दिशि में नूतन प्राण जगा,
युग अपने दृढ़ अभियानों से
संसार बदलने वाला है।

अब नहीं रहेगी जड़ हिंसा,
शोषण का अन्त हुआ समझो।
अब दूब-दूब पर धरती की
आलोक उतरने वाला है।

पीड़ित मानवता के कर में
अब आने वाली है सत्ता।
अब आहों के दाहों से भू पर
भूकम्प उभड़ने वाला है।

सम्हलो युग के अत्याचारो!
सम्हलो युग-युग के उत्पीड़न!
अब शान्ति-न्याय का प्रखर सूर्य
जन-पथ से चलने वाला है।

पावस-गीत

हरे रंग की पहन चुनरिया, पावस की धरती मुसकाई।
शून्य गगन के पंथी बादल, दौड़ पड़े लेकर अँगड़ाई॥

× × ×

जगती के अंचल पर बिखरी
स्नेहांचल की शीतल छाया।
मधु रस-सिंचन से वसुधा की
चमक उठी दूबों की काया॥

नवयौवन पाकर कृषकों की, फूल उठी जीवन अमराई।
हरे रंग की पहन चुनरिया, पावस की धरती मुसकाई॥

× × ×

उतर रहीं भू पर सहमी-सी
मेघ-पंक्तियाँ उच्च गगन से।
ग्रीषम के जल रहे तवे को
घेर रहा पावस बून्दों से॥

जल-जल बीता जेठ मास, अब निखर रही जग की तरुणाई।
हरे रंग की पहन चुनरिया, पावस की धरती मुसकाई॥

भटक गयी यह आजादी

कभी पढ़ा पुराणों में, थे एक भगीरथ राजा
कि जिसने की सिरतोड़ तपस्या
लाने को गंगा की धारा विश्व-धरा पर।
देख तपस्या ब्रह्मा खुश थे
उलट दिया था कमंडलु को—
बही स्वर्ग से गंगा-धारा
अटक गयी पर बीच मार्ग में
शिव की लम्बी विकट जटा में।
वही दशा आ पहुँची, देखो आज हमारी आजादी की।
उजली चमड़ी छोड़ बेचारी
बनी सफेद खादी की दासी
मोटा खद्दर नोंच रहा है
कोमल निर्मल उसकी छाती
पड़े फफोले, भूखा नंगा गाँव नगर है।
जख्मी जीवन और डगर है।
लेकिन रखना याद, कभी गंगा भी मुक्त बनी थी शिव से
बही धरा पर, पावन जीवन-विश्व हो गया।
अब तो भाई 'आजादी' आजाद बनेगी,
मोटा खद्दर नहीं जकड़ सकता जीवन को
नई-नई प्रतिभा काटेगी बंधन सारे।

* * *

वृक्षराज

खड़ा हुआ वह पीपल वृक्ष विशाल
अपने मद में चूर
ऊपर फैल रही हैं
मोटी-लम्बी बाँहें,
नीचे धरती की छाती को चीर चुकी हैं
मोटी-पतली जड़ भी उसकी।
ये ही जड़ हैं,
जिनके बल पर बना हुआ
यह मोटा-ताजा, भीम-भयंकर।
ये ही जड़ हैं,
जिनके द्वारा वसुधा का रस-चूसा करता,
झूमा करता,
मदमाता रहता,
अपने बल पर।
ये ही जड़ हैं,
जिनके कारण पनप न सकता
फैला कोमल विटप मनोहर, नन्हा पौधा,
इर्द-गिर्द इसकी बाँहों के,
पले हुए इसकी छाया में।
भला पनप सकते कैसे वे ?
चूस धरा का सब रस-यौवन

बना हुआ है वृक्षराज यह स्वयं भयंकर, मोटा-तगड़ा।
रहा धरा में शेष न अब कुछ,
बेबस औ' लाचार घास की हरी पत्तियाँ
ले कर जन्म मरा करती हैं, पीली हो-हो,
जैसे मरता कोई रोगी पांडु-रोग से।
मर जाती वह दूब सुकोमल, मखमल जैसी,
श्रान्त पथिक का जो आसन थी।
पर, देखो, पीपल की क्या गति ?
दुनियाँ पूजा करती उसको,
मन्त्र जपा करती है उसके —
"मूले ब्रह्मा, त्वचा विष्णुः,
शाखा शंकरमेव च,
पत्राणि सर्व तीर्थानि,
वृक्षराज नमोस्तुते।"
प्यारे यारो ! इस दुनियाँ की रीत यही है,
जो बढ़ता है आगे धक्का देता सबको.
आज वही बलवान कहाता,
औ' गुणवान् वही कहलाता,
पूजा जाता,
जैसी पूजा वृक्षराज की होती जग में।

महेन्द्र कुमार सिन्हा

नाम—महेन्द्र कुमार सिन्हा।

जन्मकाल—१३-१-'३२।

वासस्थान—मधीपुरा, भागलपुर और अभी पटना।

डिग्री—एम० ए० (अंग्रेजी)

काम—सरकारी अफसर।

यदि मुझे अपनी कविताओं की आलोचना करने को मिले तो इतना ही काम करूँगा :—

१—कविता के शब्द-शब्द पर पूरा ध्यान देना।

२—केवल उन्हीं शब्दों के आधार पर कविता का भाव-चित्र तैयार करना।

३—ये चित्र यदि उखड़े-पुखड़े न लगें तब उन पर कुछ सोचना और निर्णय करना।

४—यदि जँच जाँय तो दस-बार, सौ-बार पढ़कर रट लेना।

५—नहीं तो रद्दी की टोकरी में कविता ही फेंक देना।*

---

* नोटः—प्रयोग की कविताओं पर पढ़ने भर की दया जरूर दिखाऊँगा।

गीत

री बादल बन !
भर-भर कर जग का क्रन्दन
हर चपल क्षीणतम आशा
गा गगन-गान—ले गगन भार
कर नव जीवन-परिभाषा
छा दे फूलों से आँगन !

छाया-प्लावन
दे दे जीवन का सरल मरण
मैं विस्मृत-सा हो जाऊँ
सखि री ! बिखरा दे चिकुर-जाल
मैं सुलझूँ औ' सुलझाऊँ
मैं मृग-मन बनूँ ! तुहिन कण !
री बादल बन !

विवसता और स्वत्व

प्यार करता हूँ, लिखता हूँ, जीता हूँ
इसलिए कि मैं मजबूर, और जीने का है अधिकार !
किन्तु किससे प्यार ?
'कार' के रंगीन फूलों से, या कि रिक्शा खींचते मजदूर से ?
काँपता है चाँद नीचे तपन में
राह पर बिछती हुई
सिकुड़ी—सिमटती हड्डियाँ
दिखला रही हैं.....
आज ध्वस्त युग की कवि-छाया !
पीट रहा मद का पागलपन
विजन-वन-प्रान्त पुष्प-सी
कुम्हलाई झर गई, मरी रधिया को !
वह भूखी गर्भवती है
मगर देख तो कितना चिल्ला सकती, कितनी गाली देती
जैसे बिगड़ी शहनाई।
बाँध दिया है कैसे निलज निखट्टू से
माय-बाप ने बाँध दिया है।
लेकिन फिर भी, प्यार करती है—रोती है—जीती है
इसलिए कि वह मजबूर, और जीने का है अधिकार !
प्यार करता हूँ, लिखता हूँ, जीता हूँ
इसलिए कि मैं मजबूर, और जीने का है अधिकार !

—१९५३

प्यार की कविता

प्यार ?
ना बाबा ! प्यार नहीं !!
कौन कहता है ?
वही क्या ?
अजीब बात है
तुम कहते मेरी कविता में जान नहीं ?
मन को समझाता हूँ
मेरे निकट बैठ वह
सदा मुझे देखा करती
मुझे केवल ?
मगर
बिल्ली की आँख
सी० आई० डी० की नाक
पाकेटमारों का ध्यान
कब मैंने चाहा ?
अगर यही कविता है तो, कविता क्षमा करे मुझको।
लेकिन एक बात है
मैंने पढ़ी है रामायण
देखा है घर में माँ को—बहनों को
पायी है संवेदना अपनों से परायों से
तुम उस गतिक्रम में आती हो
तभी न तुम तो मेरी कविता
मेरी अच्छी कविता।

—१९५४

प्यार और कविता

नाराज है ?
अरे भाई, कविता और दिल में बहुत फ़र्क होता है ?
दिल मचलता है—
मगर सोचे बिना लिखूँ क्या ?
जरा दिमाग से उतरो तब न !
'पी कहाँ ......'
(कहा और उड़ गया !—
एक गीत खतम
अब दूसरा .. ...)
ये गली-गली फिरते कुत्ते
(छिः—जाने दो इन्हें—
लेकिन फिर गीत खतम
अब दूसरा हाँ ....)
नारी ...... नशा ... नबाबी
केश ...... भोली कली ...... मौत
(हाँ ! मौत !)
क्या हुआ ....
नहीं समझी या शब्द अच्छे नहीं लगे ?
देखता हूँ किसी को होश आकर रहेगा।
तुम्हें तो चोट का लखलखा चाहिए
मैं.........
शामत आई जो दिल खरीदा-बेचा।

—१९५४

प्यार

क्या इरादा हैं—जान ही दे दूँ!
कसम मेरी, खामोश मत रहिए
सोचा वही था, कट गया लेकिन
आपका छल, पहले ही मुझी से
मंसूबा भरे, मातम किया था।
मैं खुद ताज था, बनाना न हुआ
कयामत तक, आपकी रूह ढँकू
वयार में दर्द, गुनगुनाता हो।
भूख भुला दिए, सोफे टरकाए
खाली जमीं, शिकवा नहीं पनपी
कुछ बनता रहा, तसल्ली रक्खी!
मजनूँ और शीरीं, शरम से गड़ गये
क्या पहचान—क्या याद बाकी थी
मरना न चाहा, हाय री किस्मत!
अब कहिए
मेरी औ' आपकी, रूहें कहाँ रहें
मैं तो गर्दिश-तूफान में
उन्हें छोड़ने का कायल नहीं।

१९५५

ऋषि कुमार झा

जन्म—१९३६ ई०

ग्राम—नगरपारा, जिला-भागलपुर।

प्रगतिशील लेखक-संघ की प्रेरणा से इसी साल १९५५ ई० से मेरा रचना काल समझिये। इन कुछ ही दिनों में बहुत से अनुभवों की प्राप्ति हुई।

आलोचक अपनी आलोचना के भार से नई प्रतिभाओं की कमर तोड़ देते हैं; आलोचना के लिये आलोचना यदि कोई देखना चाहें तो इन टुटपूँजिये आलोचकों में देख सकते हैं। इसीलिए इन आलोचकों से डर लगता है—'नीम हकीम खतरे जान'।

जीवन के प्रति एक असंतोष अवश्य है, जो मेरी कविता में व्यंग्य द्वारा सामने आता है। इसीलिए कविता कभी शौक से नहीं लिखता। कुछ कहने को लिखता हूँ। शायद इसीलिए अपने को कभी कवि मानने की भूल भी नहीं करता।

मध्यम वर्गीय परिवार में पला—सब दिन बेफिक्र और मस्त रहने की आदत रही।

कहने को बहुत कुछ है, जिसे कविता और कहानियों के द्वारा कह सकता हूँ—यों समझता हूँ कि बिना कहे भी रहा जा सकता है।

दूसरों को इज्जत देने और दिलाने में बड़ा आनन्द आता है।

प्रथम आयाम

देखते थे कालिदास
कामिनी के हास में
मूँगे के बीच
लगा उजला फूल, पर
देखूँ मैं आज क्या !
जब हँसती
हमारी सहबालायें
रख लेती रूमाल मुँह पर,
जैसे लगता है
बिजली छिटकने ही वाली हो,
किन्तु, उसको ढँक लिया है
रंग-बिरंगे बादलों की
मोटी परतों ने
वे कहती हैं—
कि हास में दाँत का दिखाना
'एटीकेट' के खिलाफ़ है।
आधुनिक कवि हूँ—
लोग बहुरूपिया भी कह लेते हैं
देखा है कई रूपों में मैंने,
कुछ दाँत न दिखाने वाली के
दाँत कुकुरदन्ता हैं।

***

द्वितीय आयाम

ीसवाँ वर्ष है यह मेरा
ेम की दुनियाँ है
कल्पना के रंगीन-महल भी बनाता हूँ
यह कुछ विचित्र-सा लगता है
मेरे रूढ़िगत समाज को
माँ बिगड़ती हुई कहती हैं—
'इत्ती थोड़ी सी उमर में
तुम्हारी ये हालत है
जवानी धधाती है
और भी कितने ही
देखे हैं मैंने जवान बेटे'
पिता जी तरस खाते हैं, उपदेश सुनाते हैं
'यौवन का सम्मोह है यह
गीता का पाठ करो, पूजा करो, ध्यान करो
और भी बड़बड़ाते हैं
बहुत से बुजुर्ग लोग
जाने न क्या-क्या
चाहते हैं वे सब—
मेरी भावनाओं को, इच्छाओं को अपने मतानुसार
तोड़ना, मरोड़ना
जैसे मैं मानव नहीं बल्कि निर्जीव रूई का फाहा हूँ।

* * *

तृतीय आयाम

मेरे भैय्या किरानी हैं
गाँव के 'कटकी' थे
पर अब तो वे बाबू हैं
कहते हैं अपने को 'जैन्टिल मैन'
पान खाकर मुँह भी फुलाते हैं
मिलते हैं महीने में अस्सी ही
ऊपर से बीबी है और चार बच्चे हैं,
चाहते हैं शहर में ही बीबी के साथ रहना।
बीबी भी है उनकी नखरे दिखाने वाली
शहर में रहने की हवश भी दिखाती है।
पढ़ी है 'अपर' तक,
शौक से ले जाते बाबू जब
'छाया', 'माया' भी पढ़ती हैं
होठों पर रहते हैं
सिनेमा के गीत हरदम
पर आ जाती गालियाँ, जब
झगड़ा कभी सास से होता है
कहती है अपने को 'अपटूडेट'
पता नहीं, गाँव में मोदी के
कितने बाकी हैं उधार दाम बीड़ी के।

* * *

रणजीत सिन्हा

जन्म—१९४० ई०

ग्राम—जगदीशपुर, भागलपुर ।

आज की दुनियाँ में जीने के लिए जिन तीन चीजों की आवश्यकता है—दुर्भाग्यवश उसमें से एक को छोड़कर अन्य चीजों को करीब करीब मैंने पा लिया है। रोजी के लिए विज्ञान, मनोरंजन के लिए चित्रकारी एवं साहित्य, और जीवन भर साथ रहने के लिए एक विश्वासी साथी ! इस छोटी-सी उम्र में ही राह चलते एक साथी मिला था। लेकिन काल के थपेड़ों ने उसे मुझसे दूर भगा दिया, इसलिए अक्सर अनमना-सा रहा करता हूँ ।

दूसरों की बुराई सुनता हूँ तो दिल जल उठता है। यों मैं दावा नहीं कर सकता कि किसी की बुराई करता ही नहीं । प्रायः ऐसी कोशिश करता हूँ कि किसी भी कार्य में मेरे मुख से 'नहीं' न निकले ।

साहित्य क्षेत्र में तीन व्यक्तियों का सदा कृतज्ञ रहूँगा, जिन्होंने मुझे आगे बढ़ने को प्रोत्साहित किया—सहारा दिया। ये हैं सर्व श्री महेन्द्र कुमार सिन्हा, रघुनाथ घोष, विष्णु किशोर 'बेचन' ! बस ।

एक क्षण

हाँ,
मैं रूठ गया था
सोचा था—
न जाऊँगा बिना बुलाये
न मानूँगा, बिना मनाये
लेकिन—
क्या मालूम
कि वह भी रूठ गई थी।
आज, अचानक
पहुँचा ज्यों ही
कह-कहे पड़े जोरों के
मैं समझ न पाया कुछ भी
तो वह बोली धीरे से—
"तुम हारे, मैं जीती"
और कहा तब मैंने—
"सब दिन, तुम जीतो
मैं हारूँ;
तुम मुस्काओ
मैं गाऊँ।"

दूसरा क्षण

कैमरा
लेकर खड़ा था
पास ही
उस पूल के
ज्यों-ज्यों—
वह समीप आती
हस्त काँपते
अंतर का द्वन्द्व,
नयन बांधता
निकट ज्यों पहुँची
छवि बोली—
"रूप फ़ोटो में नहीं है
डरते क्यों ?
खींचो,
खींच लो
मनका आवेग
शान्त हो ले।"
मैं हतप्रभ था
सुन कर
और केवल
सोचता-देखता रह गया।

गीत

मेरे कृष्ण कन्हैया आजा
खड़ी-खड़ी मैं गाती गीत
आज नहीं संकोच हमें है
उमड़ रहा है क्षण-क्षण प्रीत

पूनम की उस मधुर निशा में
चूम-चूम कर मुख अविराम
करते थे अनुरोध पकड़ कर—
"गाऊँ एक बार मैं गान"

था संकोच हृदय पर छाया
इसी हेतु गा सकी न गान
आ जाओ मेरे घर चंचल
आज सुनाऊँ मीठी तान

ऊपर तारों का झलमल दल
पल-पल चन्दा की मुस्कान
मलय समीरण धीरे बहता
सुनकर मेरे उन्मन गान

मेरे कृष्ण कन्हैया आओ
आकर सुन जाओ ये गान
आओ वेश सजा कर सुन्दर
करो और मत मुझसे मान

बेचन

पूरा नाम—विष्णु किशोर झा, 'बेचन',

जन्म—१९३० ई०, शिक्षा—एम० ए० (हिन्दी)

स्थायी वासस्थान—ग्राम—लगमा, पत्रालय—सोनवरसा राज, जिला—सहरसा।

वर्त्तमान स्थान—श्री भगवान पुस्तकालय, भागलपुर-२

काम—नौकरी और साहित्यिकी !

लेखन—सब कुछ लिखता हूँ—कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, आलोचना इत्यादि-इत्यादि। साहित्य की सभी प्रवृत्तियों का सफल लेखक दोस्त मानते हैं, पर समालोचना लिखने में अधिक मन रमता है।

'भारती' मासिक पत्र को लेकर पत्रकारिता-क्षेत्र में प्रवेश, कई पुस्तकें प्रकाशन के लिए तैयार ! आजकल 'रिसर्च' करने की बात गम्भीरता से सोच रहा हूँ।

प्रकाशन—'इन्सान की लाश' नामक कहानी-संग्रह का १९५३ ई० में प्रकाशन ! 'रजनी गंधा' नामक काव्य-संकलन के कवियों में एक।

सार्वजनिक कार्य—भागलपुर जिला पुस्तकालय-संघ के मंत्री के रूप में सार्वजनिक संस्थाओं में सर्व प्रथम प्रवेश ! उसके बाद से सार्वजनिक संस्थाएँ मेरे जीवन का अंग ! अभी 'द्विजेन्द्र-गोष्ठी', भागलपुर और 'भागलपुर प्रगतिशील लेखक-संघ' एवं भागलपुर जन-परिषद् का मंत्री !

विश्वास—नयी जनवादी दुनियाँ की स्थापना में विश्वास है।

गीत

मधुकर मधु का भेद न जाने !

चुनता रहता बिखरे मधुकण
हत वैभव औ' वैभव के कण
गुन-गुन, गुन-गुन सुमन कली का रस ले ना पहचाने !
मधुकर मधु का भेद न जाने !

चित्रांकित सा ठिठका जीवन
चिर विषाद गंभीर आज जन
सौरभ हीन सुमन झड़ता क्यों, मधुकर पीर न जाने !
मधुकर मधु का भेद न जाने !

घुल-घुल पीड़ा बनती ज्वाला
मधुकण मधुकर की नव माला
नीलकंठ तुम नहीं भंवर रे, छल से ज्वाल न माने !
मधुकर मधु का भेद न जाने !

अभियान

नये चरण बढ़ रहे, नया युग लेता है अँगड़ाई ।

'पंचशील' का गौरव-गर्जन सह-अस्तित्व हमारा
आज ऐशिया लगा रहा है शान्ति, प्रेम का नारा
श्रम की जागी नयी क्रान्ति है, नयी चेतना आई,
नये चरण बढ़ रहे, नया युग लेता है अँगड़ाई ।

लेनिन-गांधी की आत्मा का मिलन हुआ है अभिनव
बुलगानिन-नेहरू का खुल कर स्वागत करता जनरव
'नव निर्माण करो साथी', संदेश मित्रता लाई ।
नये चरण बढ़ रहे, नया युग लेता है अँगड़ाई ।

शोषण की दीवार गिर रही, नयी जिन्दगी आई
एक और जन-क्रान्ति चाहिए, चिर अशांति है छाई
'वर्गहीन, हो जातिहीन' आवाज पूर्व से आई
नये चरण बढ़ रहे, नया युग लेता है अँगड़ाई ।

देखो चीन, रूस जागा है, नयी सुबह की लाली
आज हिन्द की धरती पर भी फैला दो हरियाली
विश्व-युद्ध का दानव रोता, तम पर कुंठा छाई,
नये चरण बढ़ रहे नया युग लेता है अँगड़ाई ।

✠ ✠

स्वर्ग के देवता

स्वर्ग के देवता केवल तुम देखते ही रहे—
मेरी वीणा टूट गयी है
मैं अपना संगीत खो चुका हूँ
अब विश्वास भी खो चुका
पर चान्द और सूरज के सम्पूर्ण आकर्षण के रहते हुए भी
समुद्र में ज्वार नहीं उठता
उनके प्रखर प्रकाश के रहते हुए भी
झिल-मिल तारों की रोशनी नहीं बुझती
जुगनू सा बिजली का बल्ब चमक रहा है
समुद्र की छाती पर हमारे जहाज तैर रहे हैं
उसमें कोलाहल भरा है
संगीत की पहचान किसी के पास नहीं
हमारी वीणा तोड़ दी गयी है
और हम·····जीवित·····उसे·····देखते भर हैं
और स्वर्ग के देवता तुम भी देखते रहे
जहाज का सभी बंदरगाह छूटा जाता है
शायद तेजधार में इसे कोई सँभाल नहीं पाता
बहा जा रहा है
रसद की कमी हो गयी है
मुसाफ़िर बेकार हैं
अब उन्हें भूख सता रही है,

वे भूख से व्याकुल छुप-छुप कर
अपने बच्चों का मांस नोचते हैं
मुसाफिरों की रसद चोरी करते हैं
बीमारी फैलती जाती है,
खून, कराह, और रोने की आवाज बड़ी भयानक है,
सभी मृत्यु की आशंका से डरे से है, और·····सहमे से भयभीत
पर कोई बंदरगाह पास नहीं आता
स्वर्ग के देवता ! अब दूर लाल-लाल
हलकी किरणें दिखायी दे रही हैं
शायद बंदरगाह है
मैं अब उसकी ही आशा में जी रहा हूँ
अंतिम उत्साह से मैं पुनः टूटी वीणा पर गा उठा हूँ
लेकिन तुम्हारा मौन अच्छा नहीं लगता
तुम क्यों चुप हो ?
संदेश तो देते जाओ
शायद ये प्रगति तुम्हें अच्छी नहीं लगती
लेकिन तुम कर भी क्या सकते हो ?
समुद्र की तेज लहरों पर तैरते जहाज को
रोक कौन सकता है !
मानवता कभी हार नहीं मानती !
अब शायद किनारा करीब है
मैं जन कोलाहल सुन रहा हूँ,

शायद वे 'शान्ति' का 'कोरस' गीत गा रहे हैं,
खुशियाँ मना रहे हैं
हम अब दूर से ही झँडे फहरा कर उनकी ओर संकेत करेंगे—
"प्यारे भाई ! हम भी तुम्हारे साथ गाने आ रहे हैं"
लेकिन देखता हूँ तुम्हारा रूप स्याह हो रहा है
तुम्हारी हृदय गति रूकने लग गयी है
तुम तो ठँढे पड़ चुके हो
हम अब शोक भी क्या करें,
संसार परिवर्त्तनशील है
तुम वृद्ध भी हो चुके थे,
जीने से तुम्हें कष्ट ही होता था,
क्यों कि तुम अपने सामंती अहम् को टूटता हुआ नहीं देख सकते थे
पर कमजोर होने से तुम्हारा अधिकार भी नहीं चलता था,
तुम अंतर में जलकर रह जाते थे।
अच्छी बात है, अब तुम्हें शांति मिली
बंदरगाह आने दो, हम तुम्हें दफ़ना देंगे
लेकिन शोक प्रकट करने का समय नहीं
क्योंकि पास ही लोग शान्ति का कोरस गा रहे हैं
हम भी उसमें शामिल हो जायेंगे, हँस-हँस कर गायेंगे
क्योंकि रोने से फायदा नहीं
फिर रोकर अपनी हँसी क्यों कराऊँ !
गाकर जीवन का नया आनन्द ही क्यों न लूँ !!

परशुराम मोदी 'दिव्यांशु'

नाम—परशुराम मोदी 'दिव्यांशु'।
पिता का नाम—श्री रामाशीष मोदी। जन्म—२८-८-१९२७ ई०
वास-स्थान—बाँका (भागलपुर)।

मेरी पहली कविता सन् १९४७ ई० में प्रकाशित हुई थी।

आर्थिक अभाव के कारण मुझे मैट्रिक पास करने के बाद कलकत्ता जैसी महानगरी की शरण लेनी पड़ी। वहीं नौकरी कर विद्यासागर कॉलेज में आगे की पढ़ाई प्रारंभ की। बी० काम० की परीक्षा के कई मास पहले ही मैं जोरों से बीमार पड़ा। कलकत्ता छोड़ कर मुझे पुनः घर वापस आना पड़ा और आज तक इसी उधेड़बुन में पड़ा हूँ कि क्या करूँ ?

कठिनाइयाँ सामने हैं,—उलझने मुस्कुरा रही हैं। में कुछ अवाक्-सा खड़ा हूँ। ईश्वर पथ दें, यही कामना करता हूँ।

समाज की दयनीय अवस्था एवं पड़ोसियों की दरिद्रता ने तो मेरी अन्तर्वेदना को एक और शह दे दिया है। आर्थिक-विषमता की दीवार को हर क्षण मेरी भावना ध्वस्त कर देना चाहती है। यही कारण है कि मेरी पहली कविता की पहली क्ति जो सन् १९४७ में प्रकाश में आयी थी 'उन महलों में आग लगा दें' विद्रोह से भरी हुई है।

अभी विद्रोही जीवन जी रहा हूँ—

गीत

दीपक जल कर राख हो गया
पर, न अमा की धुली कालिमा ।
ओस-बिन्दु आँसू बन ढरके
पलकों पर सावन-घन झलके
उष्ण वायु ग्रीषम से तपके
विरह-बावली के तन-मन के
आँचल बेसुध हो-हो सरके
तन सूखा औ' स्याह हो गया
पर, न निशा की धुली कालिमा ।
दीपक जल कर राख हो गया
पर, न अमा की धुली कालिमा ।
तारक शत खिल-खिल कर आये
नीलम-ताल-सरोवर भाये
शुक, मराल, मुक्ता नव पाये
खिल कर खुले, गगन मुस्काये
दिशा प्रतीची, प्राच्य सुभाये
सब आ-आकर पुनः खो गये
रह न सकी नभ मदिर मधुरिमा ।
दीपक जल कर राख हो गया
पर, न अमा की धुली कालिमा ।

***

विषमता

मुझे अश्रु का शाप, तुम्हें वरदान खुशी का यह क्या रे!
मैं तड़प-तड़प झोपड़ियों में
नादान घुटे-दम मरता हूँ
क्षुधा-क्षुब्ध प्राणों में मैं
निःस्वास प्रलय का भरता हूँ
तुम महल अटारी मंच राज
चढ़ वैभव पर इतराते हो
ऊपर अम्बर में वायुयान
नीचे मोटर से जाते हो
मैं धूल गड़ा झुकते-झुकते
जलती धरती पर कदम थाम
नंगे सिर आतप ढोता हूँ
कुछ प्यार-पीर ले सुबह-शाम
कुछ ज्ञान न मुझको मानव का
अधिकार कहाँ अब सोया है
समतल पर भी रह कर हमने
विष-बीज कहाँ से बोया है
आजाद हुए पर फिर बंधन
कारा की नई कहानी क्या
अपने यदि मालिक मौला हैं
यौवन की बँधी रवानी क्या
तुम्हें पलंग की पीठ, मुझे फ़टहाल गरीबी यह क्या रे!
मुझे अश्रु का शाप, तुम्हें वरदान खुशी का यह क्या रे!

गीत

सजे हैं प्यार के तारे, गगन में भी, नयन में भी।

नयन से मुस्कुरा देते गगन के ये सितारे भी
गगन के शून्य में खोये नयन के ये नजारे भी—
मिलन है अन्त दोनों का क्षितिज पर एक-से लगते
ढुलक कर ये तुहिन कण-सा जमीं छू कर झलक पड़ते
घुमड़ती हैं नयन में भी गगन के मेघ की माला
बरसती आँसुओं-से यह नयन के प्यार की हाला
गगन में चाँद हँसता है नयन में ज्योति मधुवाला
छिटक कर चाँदनी बनती नयन में भी, गगन में भी—
सजे हैं प्यार के तारे, गगन में भी, नयन में भी।

गगन की रात पलती है नयन की कालिमा पर छा
नयन सुख-नींद सोता है गगन के अंक में शिशु-सा
गगन की भोर ही तो है नयन की जागरण-वेला
समय पर पूर्ण विकसित हो झलकती ज्यों दिवा-सेला
नयन का शून्य धूमिल है गगन के सांझ-सा झुट-पुट
प्रणय के पंथ पर दोनों रहे हैं एक-सा संपुट
गगन के इन्द्र-धनु में ही नयन का रंग सतरंगी
पलक पर श्याम चादर है गगन के भी, नयन के भी—
सजे हैं प्यार के तारे, गगन में भी, नयन में भी।

रामप्रकाश सिंह

नाम—रामप्रकाश सिंह ।

ग्राम—कलासन ।

जिला—सहरसा ।

जन्म काल—१९३२ ई० ।

रचना काल—१९४५-४६ ।

मैं किसी राजनैतिक दल का पोषक या प्रचारक नहीं और न कवि कहलाने का ही दावा करता हूँ।

मेरी पहली रचना वीररस की हुई; परन्तु मेरे जीवन का रंग जैसे-जैसे बदलता गया—रचना-गति बदलती गई। मेरा करुण जीवन मेरी कला को वरदान मिला। मुझे अपने जीवन से युग-जीवन परखने की प्रेरणा मिली। मैं अपने जीवन से कभी घबराया नहीं, परन्तु विश्व का अशान्त और दुःखमय जीवन मेरे अन्तर में आग लगाता रहता है। इसे बर्दाश्त करना मेरे लिये कठिन है।

आर्तनाद

करुण कण्ठ की करुण कहानी
आज कौन सुनने वाला है।
राग-रंग में मस्त पड़ा जग
मद-प्याला पी मतवाला है॥
यह जीर्ण अस्थि का बना महल
जिस पर होता है मधुर गान।
रोती लाखों कुटिया पल-पल
पलते हैं जिनमें विकल प्राण॥
कोमल हृत अंगार हो गया
साँस निकलती ज्वाला बन-बन।
किसने कहर नहीं सुन पाई?
गूञ्ज उठा तो जग का कण-कण॥
अंत नहीं होगा मुझ तक ही
जल-जल कर जलता जठरानल।
आग उड़ेगी नभ में भीषण
लहक उठेगा सारा भूतल॥
धधक चली अब ज्वाल अभ्र में
है उड़ी भयंकर चिनगारी।
हाहाकार मचा है जग में
जल जायेगी महल-अटारी॥
प्रलय मचेगा पुनः सृष्टि में
होगा युग का नव निर्माण।
नव इतिहास बनेगा जग का
पायेगी पृथ्वी परित्राण॥

प्रतिफल

ऊँचे अम्बर के ऊपर ही, ऊपर सुधा-सिन्धु है लहराता ।
नीचे है धरणी तड़प रही, जग कर्णधार है इठलाता ॥
मनुज-अस्थि की सीढ़ी पर, चढ़ अमदूत अमृत पी जाता ।
अपने आँसू की अञ्जुलियाँ, भर-भर मानव प्यास बुझाता ॥
कहता है वह—"तिमिर चीर मैं नभ की नव-ज्योति उतारूँगा ।
विपदा का बादल अभी फटेगा, भू पर स्वर्ग उतारूँगा ॥
किन्तु मिला न मनुज को कभी किरण-कण उनके घर हुआ उजाला ।
दे दान रुधिर का मानव ने, पाया है विष का प्याला ॥
मानव-मानव के स्वच्छ रक्त से, देव लोक में दीप जला है ।
मनुज-शक्ति-संचय से सुर का, शक्तिवान रथ आज चला है ॥
जिनको कहते हम "दिव्य देव !" बन जाता वही लुटेरा ।
जगें धरा पर नई रश्मियाँ, भागे गहन अंधेरा ॥

✠ ✠

आर्तनाद

करुण कण्ठ की करुण कहानी
आज कौन सुनने वाला है।
राग-रंग में मस्त पड़ा जग
मद-प्याला पी मतवाला है॥
यह जीर्ण अस्थि का बना महल
जिस पर होता है मधुर गान।
रोती लाखों कुटिया पल-पल
पलते हैं जिनमें विकल प्राण॥
कोमल हृत अंगार हो गया
साँस निकलती ज्वाला बन-बन।
किसने कहर नहीं सुन पाई?
गूञ उठा तो जग का कण-कण॥
अंत नहीं होगा मुझ तक ही
जल-जल कर जलता जठरानल।
आग उड़ेगी नभ में भीषण
लहक उठेगा सारा भूतल॥
धधक चली अब ज्वाल अभ्र में
है उड़ी भयंकर चिनगारी।
हाहाकार मचा है जग में
जल जायेगी महल-अटारी॥
प्रलय मचेगा पुनः सृष्टि में
होगा युग का नव निर्माण।
नव इतिहास बनेगा जग का
पायेगी पृथ्वी परित्राण॥

प्रतिफल

ऊँचे अम्बर के ऊपर ही, ऊपर सुधा-सिन्धु है लहराता ।
नीचे है धरणी तड़प रही, जग कर्णधार है इठलाता ॥
मनुज-अस्थि की सीढ़ी पर, चढ़ अग्रदूत अमृत पी जाता ।
अपने आँसू की अञ्जुलियाँ, भर-भर मानव प्यास बुझाता ॥
कहता है वह—"तिमिर चीर मैं नभ की नव-ज्योति उतारूँगा ।
विपदा का बादल अभी फटेगा, भू पर स्वर्ग उतारूँगा ॥
किन्तु मिला न मनुज को कभी किरण-कण उनके घर हुआ उजाला ।
दे दान रुधिर का मानव ने, पाया है विष का प्याला ॥
मानव-मानव के स्वच्छ रक्त से, देव लोक में दीप जला है ।
मनुज-शक्ति-संचय से सुर का, शक्तिवान रथ आज चला है ॥
जिनको कहते हम "दिव्य देव !" बन जाता वही लुटेरा ।
जगें धरा पर नई रश्मियाँ, भागे गहन अंधेरा ॥

✠ ✠
✠

दहन

रोता है इस जग का कण-कण
औ'—रोते हैं प्राण हमारे ।
तप्त अश्रु की बून्द-बून्द से
भींग गए अब भूतल सारे ॥
रोता है यह खड़ा हिमालय
रोते हैं अब गगन-सितारे ।
शीतल गंगा तप्त हो चली
जलधि बीच भी ज्वार उठा है ॥
दुख से आहत मानव-उर में
विप्लव का तूफान जगा है ।
गहन-गहन गिरि-गह्वर नभ-थल
हाय-हाय कर डोल रहा है ॥
भस्म करो यह जगत स्वार्थ का,
त्रिविध ताप को शान्त करो रे ।
शोषक दुनियाँ जुल्म कर रही
युग कहता है सृजन करो रे ॥
सौम्य प्रकृति की कोमल काया
हँसे मुक्त हो, बढ़े चलो रे ।
सूत्रधार हम नई सृष्टि के
जगें, विश्व को जगा चलो रे ॥

दो शब्द

"मोटा खद्दर नहीं जकड़ सकता जीवन को
नई नई प्रतिभा काटेगी बंधन सारे" (पृ० २२, खगेन्द्र)

—कैसा गंभीर आत्मविश्वास है !

"हँसेगी धूप दूबों पर
मिलेगी गात में गर्मी
नहीं भिनसार नूतन दूर
जगने जा रहे मजदूर....." (पृ० १२, मधुसूदन)

जन-सामान्य के उज्ज्वल भविष्य के प्रति कैसी अदम्य आस्था है !

"तुहिन-कणों में मलय-समीरण कंचन घोल गये
गगन-विपिन में किरण-विहग पंचम में बोल गये" (पृ०४, उपेंद्र)

प्रभाती छवि कैसी अनूठी अभिव्यक्ति पा गई है !

नई प्रतिभाओं का यह उन्मेष सर्वथा अभिनंदनीय है। भागलपुर, संथालपरगना और सहर्षा—बिहार के तीन जिलों की चंदनमयी मिट्टी को ही प्रस्तुत संकलन की वास्तविक भूमिका मानता हूँ मैं।

मान्य बंधु श्री प्रकाशचंद्र गुप्त (प्रयाग) का आदेश हुआ कि इसकी भूमिका मैं लिख दूं। और सच कहूं तो इन्हीं पंक्तियों के कारण "नई प्रतिभाएँ" के प्रकाशन में इतना अधिक विलंब हुआ।

बेचन जी इस संकलन के लिए गत वर्ष ही तत्पर हुए थे। समूचे बिहार की नई प्रतिभाओं का प्रतिनिधित्व उन्हें अभीष्ट था लेकिन साधन और समय की सीमाओं ने उनके उस मनोरथ को धरती पर नहीं उतरने दिया। जिला-जिला में फैले हुए शहरों-कस्बों और गांवों की ख़ाक छानकर नव-कवियों से रचनाएँ और मुद्रण-समिधा (चंदा) हासिल करना बड़ा ही कष्टसाध्य मोर्चा था। एम्०ए० की अपनी फाइनल तैयारी छोड़कर ही बेचन यह मोर्चा संभाल सकते थे।

इस वर्ष परीक्षा से मुक्त होकर उन्होंने यह संकलन तैयार किया है। संकलन की अभी यह प्रथम संख्या हमारे सामने आ रही है।

इस प्रकार के छिटफुट प्रयास कवि-कर्म के विकास की सुदीर्घ परम्परा में अपने लिए कोई ख़ास जगह नहीं बना पाएंगे, ऐसा सोचना ग़लत है। वाङ्मय की अनंत-अपार राशि आकाश से नहीं उतरी

है। फुटकर कविताओं के संकलन कभी अवहेलना की दृष्टि से नहीं देखे गये। नई प्रतिभाओं के चमत्कार सदैव सराहे गये हैं।

महेंद्र, ऋषि और रणजीत की प्रयोगशीलता ने मुझे आकृष्ट किया है। उपेंद्र इन आठों में सब से प्रौढ़ हैं, खगेंद्र सबसे नवीन। मधुसूदन, बिलास और बेचन की रचनाएँ मुझे अपेक्षाकृत अधिक शिथिल तथा 'ऊभड़-खाभड़' लगीं। काव्यकौशल हासिल करने की प्रक्रिया में यों तो इन आठों को अभी साधना करनी होगी, परंतु शेषोल्लिखित तीन कवियों में यह साधना कई गुनी अधिक अपेक्षित रही। मुक्त-छंद लिखें तो सुगठित-सुसंयत-सुदृढ़-गतिमय मुक्तछंद लिखें। तुकांत लिखें तो प्रास-शुद्धि की उपेक्षा न करें। तारसप्तक (दोनों) का पारायण नई कविता का गुर हासिल करने के लिए अनिवार्य है वर्ना टेकनीक की घुड़दौड़ में प्रतिभा की आपकी घोड़ी हमेशा के लिए पिछड़ जाएगी। प्रत्येक गीतकार को बच्चन के संकलनों की आवृत्ति करनी ही चाहिए। प्रत्येक प्रगतिशील और प्रयोगशील कवि को गिरिजाकुमार माथुर के संकलनों का पुनः पुनः अवलोकन करते ही रहना चाहिये। नयासाहित्य, हंस, प्रतीक, कल्पना आदि की फाइलें भी नई प्रतिभाओं के लेखे आवश्यक हैं।

अंत में, बेचनजी से मेरा अनुरोध है कि प्रति वर्ष वह इस प्रकार का एक संकलन हमें देते चलें। कभी कहानियों का, कभी स्केचों का, कभी एकांकियों का.........

१५ फरवरी ५६
पटना-४

नागार्जुन

प्रगतिशील लेखक-संघ, भागलपुर

स्थापन-तिथि-१० जुलाई, १९५५ ई०

सभापति— श्री उपेन्द्र नारायण चौधरी

उप सभापति—श्री बंकिमचन्द्र बनर्जी

प्रधान मंत्री— श्री विष्णु किशोर 'बेचन', एम. ए.

सहायक मंत्री—श्री मुकुटधारी 'दीन', बी. काम

" "—श्री खगेन्द्र प्रसाद ठाकुर

कार्य समिति के सदस्य—श्री निरंकुश

श्री प्रेमकुमार जायसवाल

श्री जगदीश चन्द्र झा

श्री बिलास बिहारी

श्री रामप्रकाश सिंह

श्री शंकर प्रसाद साह

डा० श्री रंगनाथ कौशिक

प्रो० श्री हरि दामोदर

श्री एन० पी० लाला

श्री मती नलिनी सहाय